ब्रह्म और शक्ति : अद्वैत-वेदांत में परम सत्य और उसकी अभिव्यक्ति

डॉ. नवीन दीक्षित[1], द्रोण कुमार[2]

[1]विभागाध्यक्ष – भारतीय दर्शन विभाग

[2]शोधार्थी - भारतीय दर्शन विभाग

साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची

Email – dronkumarsahu2600@gmail.com

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.21590624

सारांश

भारतीय दर्शन की परंपरा में परम सत्य की खोज विभिन्न दार्शनिक दृष्टियों के माध्यम से की गई है। इन दृष्टियों में अद्वैत-वेदांत का विशेष स्थान है, जिसके अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र परम सत्य है और समस्त जगत उसी का प्राकट्य है। अद्वैत-वेदांत में ब्रह्म को निराकार, निर्गुण, अनंत और सर्वव्यापक माना गया है। तथापि जगत की उत्पत्ति तथा उसके अनुभव की व्याख्या के लिए इस दर्शन में माया अथवा शक्ति की अवधारणा को स्वीकार किया गया है। यह शक्ति ब्रह्म की सृजनात्मक तथा गतिशील अभिव्यक्ति के रूप में समझी जाती है।

प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य अद्वैत-वेदांत के आलोक में ब्रह्म और शक्ति के संबंध का दार्शनिक विश्लेषण करना है। इस अध्ययन में उपनिषदों तथा आदि शंकराचार्य के दार्शनिक और भक्तिपरक साहित्य के आधार पर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि ब्रह्म और शक्ति परस्पर विरोधी तत्त्व नहीं हैं, बल्कि एक ही परम सत्य के दो आयाम हैं। विशेष रूप से सौंदर्य-लहरी तथा आनंद-लहरी जैसे स्तोत्र ग्रंथों के माध्यम से यह दिखाया गया है कि अद्वैत परंपरा में देवी-तत्त्व और शक्ति की अवधारणा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अद्वैत-वेदांत में ब्रह्म परम चेतना का स्वरूप है और शक्ति उसी चेतना की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार ब्रह्म और शक्ति का संबंध दार्शनिक दृष्टि से अभिन्न और समन्वयात्मक है, जो भारतीय दर्शन की व्यापक और समावेशी दृष्टि को प्रकट करता है।

प्रस्तुत अध्ययन केवल दार्शनिक स्तर पर ब्रह्म और शक्ति के संबंध की विवेचना तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके सामाजिक एवं नैतिक आयामों पर भी विचार करता है। आलेख में यह प्रतिपादित किया गया है कि यदि समस्त जगत को ब्रह्म अथवा शक्ति की अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया जाए, तो

करुणा, अहिंसा और समन्वय की भावना स्वतः विकसित होती है। इस प्रकार अद्वैत और शाक्त परंपराएँ मानव जीवन के लिए एक व्यापक आध्यात्मिक तथा नैतिक दृष्टि प्रस्तुत करती हैं।

मुख्य शब्द : अद्वैत-वेदांत, ब्रह्म, शक्ति, शाक्त दर्शन, देवी-तत्त्व, शक्तिपीठ, समन्वयवाद |

प्रस्तावना (मुख्य विवेचन)

भारतीय दर्शन की समृद्ध परंपरा में परम सत्य की खोज विभिन्न दार्शनिक दृष्टियों के माध्यम से की गई है | इन दृष्टियों में अद्वैत वेदांत और शाक्त दर्शन का विशेष स्थान है | "ब्रह्म" और "शक्ति" दो ऐसे मूल तत्त्व हैं, जिन्हें क्रमशः —अद्वैत वेदांत और शाक्त दर्शन—से जोड़ा जाता है। परंतु गहन दार्शनिक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि ये दोनों परंपराएँ अंततः एक ही परम सत्य की भिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। अद्वैत वेदांत जहाँ "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" का प्रतिपादन करता है, वहीं शाक्त परंपरा "सर्वं शक्तिमयम्" कहकर उसी सत्य को शक्ति के रूप में उद्घाटित करती है। अतः ब्रह्म और शक्ति का संबंध विरोध का नहीं, बल्कि अभिन्नता का है | एक ही अद्वैत तत्त्व के दो परिप्रेक्ष्य है |

अद्वैत वेदांत के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र पारमार्थिक सत्य है ,इसके अतिरिक्त जो कुछ भी प्रतीत होता है, वह न तो पूर्णतः सत् है और न ही पूर्णतः असत्, बल्कि अनिर्वचनीय है। इसी अनिर्वचनीयता को "मिथ्या" कहा जाता है।

आचार्य शंकर के अनुसार, जगत की अनुभूति माया के कारण होती है। यह माया ब्रह्म की ही शक्ति है, जो ब्रह्म को जगत के रूप में अभिव्यक्त करती है, किंतु स्वयं स्वतंत्र सत्ता नहीं रखती। इस सिद्धांत को विवर्तवाद के रूप में जाना जाता है—जहाँ कारण (ब्रह्म) अपरिवर्तित रहते हुए भी कार्य (जगत) का आभास उत्पन्न होता है।

अद्वैत वेदांत में सत्ता के तीन स्तर स्वीकार किए गए हैं—

प्रतिभासिक सत्ता (स्वप्न, भ्रांति आदि), व्यवहारिक सत्ता (प्रतीत होने वाला जगत) और पारमार्थिक सत्ता (केवल ब्रह्म) |

जगत व्यवहारिक स्तर पर सत्य प्रतीत होता है, किंतु पारमार्थिक दृष्टि से वह ब्रह्म में अधिष्ठित है और उससे अभिन्न है।

अद्वैत वेदांत में ब्रह्म को अभिन्न निमित्त उपादान कारण माना गया है—अर्थात वही सृष्टि का कर्ता (निमित्त कारण) है और वही उसकी सामग्री (उपादान कारण) भी। इस दृष्टि से माया को ब्रह्म की शक्ति के रूप में समझना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

अविद्या के कारण ही जीव ,ब्रह्म से भिन्न जगत का अनुभव करता है। जब तक अविद्या निवृत्ति नहीं होती, तब तक यह भेद बना रहता है। परंतु जैसे ही ज्ञान उत्पन्न होता है, ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—इन तीनों का भेद समाप्त हो जाता है और अद्वैत ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

आचार्य शंकर द्वारा प्रतिपादित नित्य-अनित्य वस्तु विवेक इस ज्ञान की दिशा में पहला और अनिवार्य कदम है, जिसके माध्यम से साधक नित्य (ब्रह्म) और अनित्य (जगत) के बीच भेद कर पाता है।

जैसा की अद्वैत परंपरा में उदहारण दिया जाता है कि मिट्टी और घड़ा वस्तुतः अभिन्न है |

मिट्टी के दर्शन के बिना घड़े का दर्शन नहीं होता |

तंतु के दर्शन बिना कपडे का दर्शन नहीं होता |

जल के दर्शन बिना तरंग का दर्शन नहीं होता |

इसी प्रकार शक्ति के दर्शन के बिना जगत का दर्शन संभव नहीं है।

यदि हमें केवल जगत ही दिखाई दे रहा है और उसका आधार नहीं दिखाई दे रहा, तो यह हमारी अज्ञानता या अविद्या का ही परिणाम है। वस्तुतः जगत शक्ति का ही नाम-रूपात्मक विस्तार है।

शाक्त दर्शन में "शक्ति" को परम तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। यहाँ शक्ति केवल ब्रह्म की सहायक नहीं, बल्कि उसकी अभिन्न सत्ता है। प्रसिद्ध तांत्रिक उक्ति—"शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः"—इस बात को स्पष्ट करती है कि बिना शक्ति के शिव भी निष्क्रिय है।

शाक्त परंपरा में शक्ति को सृष्टि की मूल ऊर्जा माना गया है, जो न केवल जगत की उत्पत्ति करती है, बल्कि उसे संचालित और संहार भी करती है। इस दृष्टिकोण में शक्ति को "माया" की तरह केवल भ्रमात्मक नहीं माना जाता, बल्कि उसे वास्तविक और सर्वोच्च सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है।

यहाँ अद्वैत वेदांत और शाक्त दर्शन के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर स्पष्ट होता है: अद्वैत में माया अनिर्वचनीय है, जबकि शाक्त में शक्ति पूर्णतः वास्तविक है। फिर भी, दोनों में एक गहरी समानता भी है—दोनों ही अंततः अद्वैत की ओर संकेत करते हैं |

शक्तिपीठों को यदि दार्शनिक दृष्टि से देखा जाए, तो वे यह संकेत करते हैं कि शक्ति किसी एक स्थान या रूप तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सर्वत्र व्याप्त है। प्रत्येक पीठ उस सार्वभौमिक शक्ति का एक केंद्र है, जहाँ साधक उस शक्ति के साथ प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित कर सकता है। इस प्रकार, शक्तिपीठ केवल धार्मिक स्थल नहीं, बल्कि ब्रह्म की गतिशील अभिव्यक्ति के प्रतीक हैं।

यद्यपि आचार्य शंकर ने शक्तिपीठों पर कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं लिखा, तथापि उनकी रचनाओं में शक्ति-उपासना का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। सौंदर्य लहरी इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसमें देवी को सर्वोच्च सत्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

यहाँ हो रहे इतने गंभीर चिंतन का महत्व तो तभी है जब यह हमारे व्यक्तिगत व्यवहार और हमारे समाज के व्यवहार में झलके

मैं छत्तीगढ़ के ग्रामीण पृष्ठभूमि से आता हूँ , वहां के अनेक देवी मंदिरों में शक्ति-पूजा के नाम पे पशु बलि की प्रथा प्रचलित है | समाज के तथाकथित सभ्य और पढ़े लिखे लोग भी इस कुप्रथा को बढ़ावा देते नजर आते हैं |

शिव का एक अन्य नाम पशुपतिनाथ है , शिव सभी पशुओं के स्वामी है, हमारा समाज इस बात को आखिर कब समझेगा | कब तक देवी मंदिरों में बलि प्रथा जैसी कुरीति चलती रहेगी |

अद्वैत और शाक्त—दोनों ही परंपराएँ अंततः एकत्व की स्थापना करती हैं। यदि "सब कुछ ब्रह्म है" या "सब कुछ शक्ति है", तो प्रत्येक जीव उसी परम सत्य की अभिव्यक्ति है। इस दृष्टि से हिंसा का कोई औचित्य शेष नहीं रहता।

अतः आवश्यक है कि धार्मिक आचरण को दार्शनिक सत्य और करुणा के आलोक में पुनः परखा जाए।

शक्ति के तीन प्रमुख रूप बताए गए हैं—

ज्ञान शक्ति (सरस्वती), इच्छा शक्ति (लक्ष्मी) और क्रिया शक्ति (दुर्गा) |

शाक्त ग्रंथों, विशेषतः देवी भागवत पुराण में देवी को समस्त सृष्टि का मूल और आधार कहा गया है। देवी ललिता को सर्वस्व मानते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि जगत में जो कुछ भी है, वह देवी का ही विस्तार है। इसी प्रकार सौन्दर्य लहरी और आनन्द लहरी में देवी तत्त्व का दार्शनिक निरूपण किया गया है, जहाँ शक्ति और ब्रह्म का अभेद स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है।

यहाँ एक रोचक तथ्य यह है कि अद्वैत वेदांत के प्रवर्तक होने के बावजूद शंकराचार्य ने भक्ति और शक्ति-उपासना को अस्वीकार नहीं किया, बल्कि उसे साधना का एक वैध और प्रभावी मार्ग माना। उनके स्तोत्रों में देवी को न केवल सृष्टि की जननी, बल्कि ब्रह्म की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के रूप में देखा गया है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि शंकराचार्य का अद्वैत केवल दार्शनिक सिद्धांत नहीं, बल्कि एक व्यापक आध्यात्मिक दृष्टिकोण है, जिसमें निर्गुण और सगुण, दोनों का समन्वय संभव है।

ब्रह्म और शक्ति के संबंध को यदि गहराई से समझा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि वे दो अलग-अलग तत्त्व नहीं, बल्कि एक ही सत्य के दो आयाम हैं। ब्रह्म स्थिर, निर्विकारी और निरपेक्ष है, जबकि शक्ति उसी का गतिशील, सृजनात्मक और सगुण रूप है।

अद्वैत वेदांत में माया को यदि केवल अविद्या न मानकर "शक्ति" के रूप में पुनर्व्याख्यायित किया जाए, तो यह समन्वय और अधिक स्पष्ट हो जाता है। इस दृष्टिकोण से शक्ति न तो भ्रम है, न ही ब्रह्म से अलग कोई सत्ता; बल्कि वह ब्रह्म की अभिव्यक्ति है।

यह समन्वय हमें एक "गतिशील अद्वैतवाद" की ओर ले जाता है, जहाँ अद्वैत केवल निष्क्रिय एकता नहीं, बल्कि सक्रिय, सृजनशील और अनुभवात्मक एकता बन जाता है। यही दृष्टिकोण शक्तिपीठों की परंपरा में मूर्त रूप में दिखाई देता है।

अद्वैत वेदांत की सबसे बड़ी आलोचना यह है कि वह माया को "अनिर्वचनीय" कहकर समस्या से बच निकलता है। यदि माया वास्तविक नहीं है, तो अनुभव का आधार क्या है? और यदि वह वास्तविक है, तो अद्वैत कैसे संभव है? दूसरी ओर, शाक्त दर्शन की आलोचना यह है कि यदि शक्ति ही सर्वोच्च है, तो ब्रह्म की अवधारणा अनावश्यक प्रतीत होती है।

भारतीय दार्शनिक परंपरा का वास्तविक उद्देश्य केवल तात्त्विक चिंतन प्रस्तुत करना नहीं रहा, बल्कि मानव जीवन को अधिक संवेदनशील, समन्वित और आध्यात्मिक बनाना भी रहा है। ब्रह्म और शक्ति की अवधारणा को यदि केवल शास्त्रीय बहसों तक सीमित कर दिया जाए, तो उसका व्यावहारिक महत्व समाप्त हो जाता है। अद्वैत वेदांत हमें यह सिखाता है कि समस्त जगत एक ही चेतना की अभिव्यक्ति है, जबकि शाक्त परंपरा यह प्रतिपादित करती है कि वही चेतना शक्ति के रूप में समस्त सृष्टि में गतिशील है। इन दोनों दृष्टियों का समन्वय हमें जीवन के प्रति एक व्यापक और करुणामय दृष्टिकोण प्रदान करता है। जब साधक यह अनुभव करता है कि प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक चेतना उसी परम तत्त्व की अभिव्यक्ति है, तब उसके भीतर अहंकार, द्वेष और हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं बचता। यही कारण है कि भारतीय दर्शन में ज्ञान और करुणा को परस्पर पूरक माना गया है।

वर्तमान समय में धर्म अनेक बार बाह्य आडंबरों, संकीर्ण मान्यताओं और कर्मकांडों तक सीमित होता जा रहा है। शक्ति-पूजा भी कई स्थानों पर अपने मूल आध्यात्मिक स्वरूप से हटकर केवल परंपरागत अनुष्ठानों का माध्यम बनती दिखाई देती है। जबकि वास्तविक शक्ति-उपासना का अर्थ है—जीवन में चेतना, विवेक, करुणा और आत्मबोध का जागरण। यदि देवी को "जगत्-जननी" कहा जाता है, तो समस्त जीव-जगत के प्रति संवेदना और संरक्षण का भाव भी उसी उपासना का अनिवार्य अंग होना चाहिए। इस दृष्टि से अद्वैत और शाक्त परंपराएँ केवल दार्शनिक सिद्धांत नहीं, बल्कि मानवता के लिए एक नैतिक और आध्यात्मिक दिशा भी प्रस्तुत करती हैं।

आचार्य शंकराचार्य का दर्शन इस संदर्भ में विशेष महत्त्व रखता है, क्योंकि उन्होंने निर्गुण ब्रह्म के उच्चतम तत्त्वज्ञान के साथ-साथ भक्ति और उपासना को भी साधना का वैध मार्ग स्वीकार किया। उनके स्तोत्र साहित्य में देवी के प्रति जो समर्पण दिखाई देता है, वह यह स्पष्ट करता है कि अद्वैत का अनुभव केवल बौद्धिक निष्कर्ष नहीं, बल्कि एक जीवंत आध्यात्मिक अनुभूति है। इसी कारण अद्वैत वेदांत का परम लक्ष्य केवल "ब्रह्म सत्यं" की बौद्धिक स्वीकृति नहीं, बल्कि उस सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव है, जहाँ साधक स्वयं को समस्त अस्तित्व के साथ अभिन्न अनुभव करता है। इस प्रकार ब्रह्म और शक्ति का समन्वय भारतीय

दर्शन की उस महान दृष्टि को प्रकट करता है, जिसमें परम सत्य स्थिर भी है और गतिशील भी; निर्गुण भी है और सगुण भी; निराकार भी है और समस्त रूपों में अभिव्यक्त भी।

निष्कर्ष

उपसंहारतः यह कहा जा सकता है कि अद्वैत वेदांत और शाक्त दर्शन भारतीय चिंतन की दो पृथक धाराएँ प्रतीत होने पर भी अंततः एक ही परम सत्य की ओर संकेत करती हैं। अद्वैत वेदांत जहाँ ब्रह्म को परम, अखंड और निरपेक्ष सत्य के रूप में स्वीकार करता है, वहीं शाक्त परंपरा उसी सत्य को शक्ति के रूप में गतिशील, सृजनात्मक और अनुभवगम्य बनाती है। इस प्रकार ब्रह्म और शक्ति का संबंध विरोध या द्वैत का नहीं, बल्कि अभिन्नता और परस्पर पूरकता का है। ब्रह्म बिना शक्ति के निष्क्रिय प्रतीत होता है और शक्ति बिना ब्रह्म के आधारहीन। इसलिए दोनों को एक ही सत्य के स्थिर और गतिशील आयामों के रूप में समझना अधिक समीचीन है।

आचार्य शंकराचार्य के दर्शन और स्तोत्र साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अद्वैत केवल एक शुष्क बौद्धिक दर्शन नहीं है, बल्कि उसमें भक्ति, उपासना और शक्ति-तत्त्व के लिए भी पर्याप्त स्थान है। सौन्दर्य-लहरी और आनंद-लहरी जैसे ग्रंथ यह सिद्ध करते हैं कि शंकराचार्य ने देवी को केवल प्रतीकात्मक रूप में नहीं, बल्कि परम चेतना की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अद्वैत वेदांत में निर्गुण और सगुण, ज्ञान और भक्ति, ब्रह्म और शक्ति—इन सबका समन्वय संभव है।

यह अध्ययन यह भी संकेत करता है कि भारतीय दर्शन की वास्तविक शक्ति उसकी समन्वयवादी दृष्टि में निहित है। यहाँ विरोधों को समाप्त कर एक व्यापक आध्यात्मिक एकता की स्थापना का प्रयास किया गया है। यदि "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" और "सर्वं शक्तिमयम्" दोनों को समग्रता में समझा जाए, तो समस्त सृष्टि के प्रति करुणा, सम्मान और एकत्व का भाव स्वतः विकसित होता है। ऐसी स्थिति में हिंसा, भेदभाव और संकीर्णता के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता।

वर्तमान सामाजिक और धार्मिक संदर्भ में यह चिंतन और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है। शक्ति-पूजा का वास्तविक उद्देश्य बाह्य कर्मकांड नहीं, बल्कि अंतःचेतना का जागरण होना चाहिए। जब तक धार्मिक आचरण करुणा, विवेक और आत्मबोध से जुड़ा नहीं होगा, तब तक वह अपने वास्तविक दार्शनिक उद्देश्य को पूर्ण नहीं कर सकेगा। अतः आवश्यकता इस बात की है कि अद्वैत और शाक्त परंपराओं के गूढ़ दार्शनिक सत्य को केवल शास्त्रों तक सीमित न रखकर जीवन और समाज में भी उतारा जाए।

अंततः ब्रह्म और शक्ति का समन्वय हमें यह सिखाता है कि समस्त अस्तित्व एक ही चेतना का विविध रूपों में विस्तार है। यही भारतीय दर्शन की सार्वभौमिक दृष्टि है, जो मनुष्य को विभाजन से एकता की ओर, अज्ञान से आत्मबोध की ओर तथा हिंसा से करुणा की ओर ले जाती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. चटर्जी, एस. सी., एवं दत्ता, डी. एम. (2023). भारतीय दर्शन: एक परिचय. वाराणसी: मोतीलाल बनारसीदास।
2. हिरियन्ना, एम. (1995). भारतीय दर्शन की रूपरेखा. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
3. राधाकृष्णन, एस. (2010). भारतीय दर्शन. नई दिल्ली: राजपाल एंड संस।
4. शंकराचार्य, आदि. (2010). विवेकचूडामणि. दिल्ली: मनोज पब्लिकेशन।
5. शंकराचार्य, आदि. (1949). सौन्दर्यलहरी (स्वामी विष्णुतीर्थ महाराज, अनु.). गोरखपुर: गीताप्रेस।
6. शंकराचार्य, आदि. (2004). आनन्दलहरी (बलवीर सिंह फौजदार, अनु.). दतिया, मध्यप्रदेश: श्री पीताम्बरापीठ।
7. शंकराचार्य, आदि. (2022). ब्रह्मसूत्र भाष्य. वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन।
8. छांदोग्य उपनिषद्. (2020). गोरखपुर: गीताप्रेस।
9. देवीभागवत महापुराण. (2022). गोरखपुर: गीताप्रेस।